

प्रारंभिक बौद्ध एवं जैन साहित्य में विधवा नारी के जीवन एवं सामाजिक स्थिति का ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. चित्रा कुमारी मीणा*

*सह आचार्या, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विष्वविद्यालय, जयपुर

भारतीय संस्कृति के निर्माण में नारी-समाज ने प्रारम्भ से ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इसलिए नारी जीवन ही वह प्रमुख विषय है जिसको जानने की अभिलाषा हमेशा से विशिष्ट विद्वानों के साथ-साथ सामान्य जनता में भी रही है। यही कारण है कि प्राचीन समय से लेकर आधुनिक समय के हर कालखण्ड की महिलाओं के योगदान व उनकी स्थिति पर खूब लेखन कार्य हुआ है। अतः भारतीय संस्कृति को पूर्णतः जानना है तो हमें सबसे पहले नारी जीवन का ज्ञान होना आवश्यक है। वैसे तो भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा पर जो कार्य किये गये हैं उनमें से प्रमुख हैं – आई.बी.हार्नर का वुमेन अण्डर प्रिमिटिव ऑफ बुद्धिज्म, ए.एस. अल्टेकर का द पोजीसन ऑफ वुमेन इन हिन्दू सिविजिजेशन, आर.एस. दिवाकर का प्राचीन भारतीय संस्कृति में नारी, प्रीति प्रभा गोयल का हिन्दू विवाह मीमांसा आदि।

इन ग्रन्थों में प्राचीन भारतीय स्त्रियों के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। परन्तु महिला के जीवन का एक विशेष पक्ष होता है उसका वैधव्य जीवन। हालांकि प्राचीन भारत में विधवाओं की स्थिति विषय पर लेखन कार्य भी हुआ है। जैसे- गंगाप्रसाद उपाध्याय का विधवा विवाह मीमांसा, एन. के. दत्त का “विडो इन एंसिएण्ट इण्डिया, एच.टी. कोलब्रुक का आन द ड्यूटीज ऑफ द फेथफूल हिन्दू विडोज, ब्रजनाथ का विडो मैरिज इन इण्डिया आदि।

विधवाओं की स्थिति का अध्ययन इसलिए विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि उनके प्रति समाज का क्या दृष्टिकोण है, उनके साथ कैसा व्यवहार होता है, ये सभी बातें किसी देश की संस्कृति के मूल्यांकन का एक उचित पैमाना है। विभिन्न कालों त विभिन्न क्षेत्रों में विधवाओं की स्थिति में हमेशा परिवर्तन होता रहा है। अतः प्रस्तुत पत्र में मैंने प्रारम्भिक बौद्ध एवं जैन साहित्य में परिलक्षित विधवा महिलाओं की स्थिति पर लेखन कार्य करने का प्रयास किया है। क्योंकि इन दोनों ही सम्प्रदायों ने महिलाओं के प्रति अलग दृष्टिकोण रखा था। अतः विधवाओं के बारे में इन धर्मों में क्या मान्यता थी। इस विषय पर प्रस्तुत लेख में विचार किया जायेगा।

प्रारम्भिक जैन एवं बौद्ध साहित्य में विधवाओं से सम्बंधित ज्यादा स्रोत उपलब्ध नहीं हो पाते हैं अतः तदुपयोगी विधवाओं की स्थिति के बारे में अनुमान का ही विषय सहारा लेना होगा। जैन एवं बौद्ध साहित्य में केवल वे ही स्त्रियाँ विधवा नहीं कही जाती थी जिनके पति का देहान्त हो गया था वरन् जो किसी भी कारण से पतिहीन हो जाती थी उन सभी को विधवा कहा जाता था। जब किसी स्त्री का पति प्रव्रज्या ले लेता था तो वह स्त्री विधवा कहलाती थी। यही कारण था कि नवयुवकों की प्रव्रज्या से परेशान होकर उस समय के लोगों ने बुद्ध को कोसना शुरू कर दिया था कि यह सन्यासी गौतम हमारी वधूओं को विधवा बनाने आया है।

तन खो पन समयेन

मनुस्सा उज्झायन्ति

समणों गोतमों,

वेधव्याय परिपन्नों.....¹

प्रारम्भिक बौद्ध एवं जैन साहित्य का सुक्ष्म अनुशीलन करे तो यह स्पष्ट होता है कि इन दोनों ही सम्प्रदायों में विधवा-नारी की सामाजिक स्थिति ज्यादा दयनीय नहीं थी। हार्नर महोदय का भी मत है कि बौद्ध सम्प्रदाय में विधवाओं की दशा उतनी दुःखद नहीं थी जितनी ब्राह्मण सम्प्रदाय के अन्तर्गत थी।² विधवा भी सधवाओं की तरह परिवार में सभी प्रकार के अधिकारों का उपभोग करती थी। ऐसा कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है कि उन्हें सफेद वस्त्र धारण करने पड़े हों, या केश मुंचन करवाने पड़े हों या वे किसी भी शुभ एवं मांगलिक कार्य में अशुभ मानी जाती हों। हालांकि विधवा नारी स्वयं ही

अच्छे वस्त्राभूषणों को त्याग देती थी। जब महाप्रजापति गौतमी पहली बार महात्मा बुद्ध से मिलने कपिलवस्तु गई थी, तो उस समय उसने विधवा होते हुए भी न तो केशों को ही कटवाया था और न ही श्वेत वस्त्र धारण कर रखे थे।³

हालांकि जातक ग्रन्थों में कुछ जगह पर अवश्य विधवाओं की चिन्तनीय स्थिति का वर्णन मिलता है। मिलिन्दपन्हों में तिरस्कृत एवं निन्दित लोगों में विधवा की भी गणना की गई थी।⁴ महावेसंतरजातक में माद्री विधवा जीवन की परेशानियों का उल्लेख करती हैं कि उन्हें उच्छिष्ट खाना भी नहीं मिलता है। कोई भी कामीजन अनिच्छुक विधवा को वैसे भी खींचते हैं जैसे कोए उल्लू को। पति ही स्त्री का स्वामी होता है, पतिविहीन नारी उसी प्रकार है जैसे बिना जल के नदी तथा बिना राजा के राष्ट्र होता है।⁵

उक्त वर्णन उस समय की विधवाओं की स्थिति का वास्तविक चित्र प्रस्तुत नहीं करता है। उस समय बौद्ध एवं जैन सम्प्रदायों में विधवाओं को भिक्षुणी संघ में प्रवेश की अनुमति नहीं थी, जिससे वे समाज में आदर का पात्र बनी हुई थी। हालांकि कुछ विधवाओं के व्यभिचारी जीवन बिताने का भी उल्लेख मिलता है। कुछ विधवाएँ निःसंकोच पुरुषों के सहवास के प्रस्ताव को तत्काल स्वीकार कर लेती थी। बौद्ध संघ में कतिपय ऐसी भी भिक्षुणियाँ थी, जो अनैतिक कार्यों जैसे – गर्भपात कराने, नाजायज संतानों को फेंकवाने आदि में भी मदद करती थी।⁶ तदयुगीन साहित्य से पता चलता है कि विधवा होने पर महिलाएँ पति की सम्पत्ति का उपभोग कर जीवन यापन करती थी और यदि पति सम्पत्ति नहीं छोड़कर गया होता था तो वह अपने ज्ञाति कुल के संरक्षण में चली जाती थी। कभी – कभी वे पर पुरुष से विवाह भी कर लेती थी। उक्त तीनों उपायों को न अपनाकर कुछ विधवाएँ भिक्षुणी बन भिक्षुणी संघ में ब्रह्मचर्य का जीवन बिताया करती थी।

प्रारम्भिक बौद्ध एवं जैन साहित्य में विधवादाह (सतीप्रथा) का उल्लेख बहुत कम मात्रा में मिलता है। यह ऐसा अमानवीय व हिंसक कृत्य था कि कुछ जैनग्रन्थों में तो इसकी भयंकर आलोचना की गई है। वारांगचरित में राजकुमार वारांग के घुड़सवारी में घोड़े द्वारा बहुत दूर ले जाये जाने पर और उनके गुम हो जाने पर उनकी पत्नी ने अपने श्वसुर से कहा कि वह अपने पति के बिना जीवित रहने में असमर्थ है। अतः उसे अग्नि में प्रवेश की अनुमति दी जाये। राजा अपनी बहू की बात सुनकर अत्यन्त दुःखी हुआ और बोला कि तुम उस कार्य के बारे में विचार मत करो जो अप्रशंसित है।⁷ जैन सूत्रों में केवल महानिशीय में एक उल्लेख है कि किसी राजा की विधवा कन्या अपने परिवार को अपयश से बचाने के लिए सती होना चाहती थी परन्तु पिता के समझाने पर उसने यह विचार स्थगित कर दिया।⁸ इस प्रकार इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि जैन सम्प्रदाय में सती प्रथा बिल्कुल ही अमान्य थी। वहीं बौद्ध साहित्य में भी हमें विधवादाह के कोई उदाहरण नहीं मिलते हैं। बौद्ध संघ में स्त्रियों के प्रवेश मिलने से विधवाओं ने प्रव्रज्या लेना ज्यादा उचित समझा। जैसे – उदयजातक में विधवा उदयभद्रा को उसका मृत पति उदयभद्र ही जीवन की असारता का समझाते हुए उसे सती होने से रोकता है तथा धर्म पर चलने का उपदेश देता है, जिसे सुन उसकी विधवा प्रव्रजित हो जाती है। चन्द्र किन्नर जातक में किन्नर के मारे जाने पर उसकी विधवा खूब विलाप करती है परन्तु कहीं पर भी उसके विलाप में अनुमरण की बात नहीं आती है।⁹ हालांकि बहुत लम्बे समय तक यह आदर्श स्थिति चल नहीं सकी। पुनश्च बौद्ध संघ में अनाचार व्याप्त होने, भिक्षुणी संघ के पतन हो जाने पर पुनः विधवाओं को सती होने के लिए मजबूर होना पड़ा होगा। वास्तव में यदि तत्कालीन समाज में सती – प्रथा का जरा सा भी प्रचलन होता तो जीवहिंसा के विरोधी बुद्ध और महावीर स्वामी अपने उपदेशों में उस क्रूर प्रथा की निन्दा अवश्य करते। जिसका अभाव हमें दिखाई देता है।¹⁰

हमें तदयुगीन बौद्ध एवं जैन साहित्य से सती प्रथा के साक्ष्य तो नहीं मिलते हैं परन्तु विधवाओं का पुनर्विवाह होता था या नहीं, यह प्रश्न विचारणीय है। बौद्ध साहित्य में एक जगह देवर द्वारा अपने भाई की विधवा से विवाह करने का उल्लेख मिलता है।¹¹ अंगुत्तर निकाय में नमुक माता की कथा है कि उसका पति मरणशैय्या पर है परन्तु वह व्यथित भी है तभी उसकी पत्नी आश्वासन देती है कि वह किसी परपुरुष के पास नहीं जायेगी अतः आप शान्तभाव से अपने प्राण त्याग दें।¹² नन्दजातक में एक मरणशील वृद्ध की कथा है जो इस बात से चिन्तित था कि उसके मरने के बाद उसकी जवान पत्नी सारा धन अपने नये पति के पास ले जायेगी और उसके पुत्रों को कुछ नहीं मिलेगा अतः वह अपने विश्वस्त नौकर को साथ लेकर सारा धन रात्रि में जंगल में गाड़ आता है। इन जातककथाओं से स्पष्ट

होता है कि तत्कालीन समाज में विधवा विवाह हेय नहीं माना जाता था परन्तु इन सम्प्रदायों में विवाह व पुत्र उत्पत्ति पर ज्यादा जोर नहीं होता था यही कारण है कि उस समय के साहित्य में नियोगप्रथा व विधवा पुनर्विवाह के ज्यादा उदाहरण नहीं मिलते हैं।

तदयुगीन बौद्ध एवं जैन साहित्य से हमें इन विधवाओं के सम्पत्ति सम्बंधी अधिकार की जानकारी भी मिलती है। क्योंकि उपर्युक्त साहित्य में मृतपतिका स्त्री व प्रव्रजित – पतिका स्त्री दोनों के लिए विधवा संबोधन किया गया था परन्तु दोनों के आर्थिक अधिकारों में विभिन्नता थी। अंगुत्तर निकाय से ज्ञात होता है कि प्रव्रजित होने से पूर्व भिक्षु अपनी पत्नी के समक्ष तीन विकल्प रखता था। वह अपनी पति की संपत्ति के सहारे जीवन व्यतीत करे, सम्बन्धियों का आश्रय ले या पुनर्विवाह कर ले।¹³ इस प्रकार प्रव्रजित पतिका स्त्रियाँ अपने पति की संपत्ति की पूर्ण दायद हो जाती थी। लेकिन मृतपतिका विधवा तो अपने पति के कुल में ही रहती थी। यदि मृतपति के कई पत्नियाँ होती थी तो उनमें पुत्रहीन विधवा की स्थिति ज्यादा दयनीय हो जाती थी। वे विधवाएँ जिनके पास मृतपति की सम्पत्ति भी नहीं होती थी या जिनके पास समर्थ सम्बंधी नहीं होते थे, वे गरीबी में जीवन यापन किया करती थी। जैसे चन्द्रा नाम की दरिद्र ब्राह्मण की पुत्री थी व उसका विवाह भी दरिद्र ब्राह्मण से हुआ था। कमवय में विधवा होने पर अपने जीवन के सात वर्ष भिक्षापात्र लेकर भिक्षाटन करते हुए व्यतीत किये तत्पश्चात वह भिक्षुसंघ में प्रविष्ट हुई।¹⁴ इस प्रकार उस समय की विधवाओं को सम्पत्ति सम्बंधी अधिकार सुदृढ़ रूप में प्राप्त नहीं थे।

जहाँ तक विधवा स्त्रियों के राजनैतिक अधिकारों की बात की जाये तो बौद्ध एवं जैन साहित्य से ज्ञात होता है कि विधवा स्त्री या सधवा स्त्री दोनों द्वारा संरक्षित राज्य की निन्दा की गई है। जातकों से ज्ञात होता है कि राजपद पर पिता की मृत्यु के बाद ज्येष्ठ पुत्र का ही अधिकार होता था। राजा के पुत्र नहीं होने पर उसके छोटे भाई, भतीजे और मंत्रियों को बैठाया जाता था परन्तु विधवा रानी को राज्य संचालन का अधिकार नहीं दिया जाता था। कण्डिन जातक में वर्णन है कि जिस जनपद का स्त्रियाँ संचालन करती है, उस जनपद को धिक्कार है।¹⁵ क्योंकि बौद्ध साहित्य में स्त्रियों के लिए कपटी, असाध्वी, चरित्रहीन आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है इसलिए हो सकता है उस युग में महिलाओं को खासकर विधवाओं को राजपद के योग्य नहीं माना गया होगा।

प्रारंभिक बौद्ध एवं जैन साहित्य से विधवाओं की बौद्ध एवं जैन संघ में क्या स्थिति थी, उनको क्या धार्मिक अधिकार मिले हुए थे। संयोग से विधवाओं की धार्मिक स्थिति के बारे में हमें प्रचुर स्रोत मिल जाते हैं। भिक्षुणी संघ में प्रवेश पाने वाली पहली महिला गौतमी प्रजापति थी जो अन्य 500 भिक्षुणियों को लेकर संघ में प्रविष्ट हुई थी। ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन 500 भिक्षुणियों में से अधिकांश भिक्षुणियाँ विधवा या पतिप्रव्रजिता थी जो अपने जीवन से दुःखी होकर संघ में प्रवेश करना चाहती थी। इस तरह बौद्ध धर्मानुयायी विधवाओं के लिए यदि वे चाहे तो संघ में प्रवेश लेकर धार्मिक जीवन बिताना एक विकल्प हो गया था। भिक्षुणी संघ में विधवाओं का बड़ी संख्या में प्रवेश लेने का एक कारण यह भी रहा होगा कि पति की मृत्यु के बाद अपार दुःख से त्राण संघ में संभव होगा। पराचारा अपने पति, पुत्र, भाई, माता – पिता के मरने के बाद पागल एवं निराश्रित हो गई थी। पागल अवस्था में, वस्त्रहीन घुमती हुई वह श्रावस्ती के जेतवन विहार में बुद्ध के पास पहुँची। अपनी मानसिक शान्ति के लिए उसने संघ में प्रवेश लिया और साधनारत होकर निर्वाण प्राप्त किया।¹⁶ बौद्ध धर्म में किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात शोक मनाने की निन्दा की गई है। बुद्ध के धर्म प्रचार का मुख्य उद्देश्य भी दुःखों से मुक्ति दिलाना ही था। अतः विधवाओं को अपने सांसारिक दुःखों से मुक्त कराने का सहारा बौद्ध धर्म बनकर उभरा। बौद्ध संघ में धम्मा, अभयमाता, तिस्सा, धीरा, मित्रा, सुमना, भद्रा आदि विधवाओं ने प्रवेश किया था। ऐसा नहीं था कि बौद्ध संघ में निर्धन एवं बेसहारा विधवाएँ ही प्रविष्ट हुई अपितु आर्थिक दृष्टि से सबल विधवाओं ने भी संघ में प्रवेश किया था। जैसे बिम्बिसार की विधवा क्षेमा ने राजमहल छोड़कर सन्यास ग्रहण किया था तथा उदयभद्रा ने राज्य का परित्याग कर बौद्ध संघ में प्रवेश करना ज्यादा उचित समझा।¹⁷

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उस समय तक बौद्ध एवं जैन संस्कृति में विधवाओं की स्थिति ज्यादा चिन्तनीय नहीं थी। क्योंकि इन दोनों ही सम्प्रदायों में विवाह बंधन जरूरी नहीं था तथा पुत्र प्राप्ति पर भी जोर नहीं दिया गया था। अतः जो स्त्रियाँ निःसंतान ही विधवा हो जाती थी उनके सामने विकल्प होता था कि वे बौद्ध एवं जैन संघों में भिक्षुणी बन जाये तथा अपने जीवन के दुःखों का अंत करे। यही

कारण है कि इनके साहित्य में विधवा पुनर्विवाह, सतीप्रथा, नियोग प्रथा को समर्थन नहीं दिया गया है। इन बौद्ध एवं जैन सम्प्रदायों में विधवाओं को अशुभ व त्याज्य नहीं माना गया था। ब्राह्मण सम्प्रदाय की तरह श्वेत वस्त्र, केश मुंचन आदि पर जोर नहीं दिया जाता था। हालांकि मृतपतिका विधवा को दायभाग का अधिकारिणी नहीं माना गया था। उन्हें राजनैतिक अधिकार भी नहीं थे।

प्रारम्भिक जैन एवं बौद्ध साहित्य के अनुशीलन से तो लगता है कि समाज में विधवा महिलाएँ भी अपने अधिकारों का उपयोग सधवा की तरह ही कर रही थी परंतु यह आदर्श स्थिति ज्यादा समय तक नहीं रह पाई होगी और कालांतर में इन सम्प्रदायों की विधवाओं ने भी पति की चिता पर दाह होना ज्यादा उचित समझा होगा।

संदर्भ

1. महावग्ग, नालन्दा-देवनागरी-पालि-ग्रंथमाला, बिहार, 1956 पृष्ठ 51
2. हार्नर, आई.बी., वुमेन इन प्रिमिटिव बुद्धिज्म, लन्दन, 1930, पृष्ठ 72
3. चुल्लवग्ग, बिहार, 1956 पृष्ठ 246
4. शास्त्री, नीलकंठ शास्त्री, ए कम्प्रीहेंसिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, जिल्द 2, मद्रास, 1957, पृष्ठ 199
5. जातककथा, भाग 22, बिहार, 1959, पृष्ठ 547
6. जैन, कोमल चन्द्र, बौद्ध एवं जैन साहित्य आगमों में नारी जीवन, अमृतसर 1967, पृष्ठ 182-83
7. कसलिकर, यम.जे., सोशल लाइफ ऐज डेपिक्टेड इन जैन काव्य लिटरेचर, शोध प्रबन्ध, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर, 1973 पृष्ठ 359-61
8. आवश्यक चूर्णी, पुष्ठ 29
9. जातक संख्या 485
10. जैन, कोमल चन्द्र, बौद्ध एवं जैन साहित्य आगमों में नारी जीवन, अमृतसर 1967, पृष्ठ 122
11. जर्नल ऑफ अमेरिकन ओरिएण्टल सोसाएटी, जिल्दाड 1889, पृष्ठ 368
12. अंगुत्तर निकाय 3/17, नालन्दा-देवनागरी-पालि-ग्रंथमाला, बिहार, 1960
13. अंगुत्तर निकाय 3/316
14. थेरी गाथा 5/12/122-23 बिहार, 1959
15. कण्डिन जातक गाथा, भाग 1/13
16. थेरीगाथा 10/63/76-77
17. जातक संख्या, 458